



दैनिक भास्कर

Date: 07-08-26

देश की न्यायपालिका अपने प्रति भरोसे को बनाए रखे

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट के फैसलों में देरी, बेंचों द्वारा समान मुद्दों पर विपरीत फैसले और उद्धार व्यक्त करते समय शब्दों के चयन में असावधानी से सामान्य नागरिक उहापोह में हैं। ऐसे में सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट्स में जजों की नियुक्ति, तबादले और प्रोन्नति की जिम्मेदार संस्था कॉलेजियम द्वारा अपनी प्रक्रिया को पारदर्शी बनाना लोक विश्वास के लिए जरूरी है। कई बार सरकार के कहने पर कॉलेजियम के फैसलों में बदलाव से यह विश्वास कम हुआ है। न्याय सुधार से जुड़े एनजीओ विधि सेंटर फॉर लीगल पॉलिसी की एक रिपोर्ट ज्यूडिशियल ट्रांसपेरेंसी इंडेक्स के लॉन्च के अवसर पर सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस भुइयां बोल रहे थे। रिपोर्ट के अनुसार कॉलेजियम ने ताजा बैठकों के फैसलों पर पहुंचने का कारण वेबसाइट पर नहीं डाला। जस्टिस भुइयां के अनुसार पहले स्पष्ट कारण बताए जाते थे, लेकिन 2025 के बाद के तीन रेजॉल्यूशन्स में फैसलों का कारण नहीं बताया गया। रिपोर्ट के अनुसार उच्च न्यायपालिका के कुल 813 में से केवल 87 जजों ने संपत्ति का ब्योरा दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने ही कॉलेजियम सिस्टम को बहाल रखते हुए नियुक्ति आदि को लेकर संसद द्वारा पारित एनजेएसी कानून को 2015 में खारिज किया था, लेकिन यह भी कहा था कि कॉलेजियम में अपेक्षित पारदर्शिता की जरूरत है। तब से आज तक कॉलेजियम के फैसले अपेक्षाकृत पारदर्शितापूर्ण नहीं रहे हैं।

Date: 07-08-26

लोकतंत्र में सत्ता आखिरकार जनता के ही हाथों में रहती है

शशि थरूर, (पूर्व केंद्रीय मंत्री और सांसद)

जो लोग भारत के लोकतंत्र को महज चुनावी मुकाबलों या संस्थाओं के कमजोर पड़ने की चेतावनियों के चश्मे से ही देखने के आदी हैं, उनके लिए हाल के सप्ताहों ने एक ताजगी भरा नजारा पेश किया होगा। एक ऑनलाइन-कटाक्ष के रूप में शुरू हुआ घटनाक्रम आधुनिक भारतीय इतिहास में सबसे उल्लेखनीय और सफल युवा नेतृत्व वाले राजनीतिक आंदोलनों में से एक में बदल गया। काँकरोच जनता पार्टी की व्यंग्यात्मक टैगलाइन 'आलसियों

और बेरोजगारों की आवाज' थी। लेकिन कुछ ही दिनों में यह सोशल मीडिया पर एक जबरदस्त ताकत के रूप में उभरी और देखते ही देखते उसने भाजपा से भी ज्यादा फॉलोअर्स जुटा लिए।

लेकिन इस मजाक की सच्चाई उन वास्तविक शिकायतों में निहित थी, जिन्हें इसने उजागर किया। विश्वविद्यालय स्नातकों में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी की समस्या होने के बावजूद युवा अभी भी उच्च शिक्षा को ही सामाजिक उन्नति की अपनी एकमात्र आशा के रूप में देखते हैं। वे प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं की तैयारी में वर्षों बिताते हैं। लेकिन पेपर-लीक, ग्रेडिंग में अनियमितताएं और परिणामों को अचानक रद्द किए जाने से उनके स्वप्नों पर कुठाराघात हो जाता है। इस साल भी पेपर-लीक के कारण लगभग 22 लाख छात्रों को कठोर मेडिकल प्रवेश परीक्षा (नीट) फिर से देने को मजबूर होना पड़ा। जब उन्हें पता चला कि 3 मई की परीक्षा रद्द कर दी गई है, तो उनमें से कुछ छात्रों ने आत्महत्या कर ली। ऐसी त्रासदियों ने ही आर्थिक चिंताओं को व्यापक नैतिक आक्रोश में बदला था।

काँकरोच आंदोलन इसी गुस्से की आवाज बना। इससे कोई राजनीतिक पार्टी नहीं जुड़ी थी और इसे सिविल-सोसायटी के वैचारिक रूप से विविधतापूर्ण वर्गों का समर्थन प्राप्त था। यह आंदोलन पारंपरिक राजनीतिक श्रेणीकरण को चुनौती देने वाला था। जून तक यह स्क्रीनों से निकलकर सड़कों पर आ गया। शिक्षा-व्यवस्था में सुधार की मांग को लेकर राजधानी और प्रमुख शहरों में हजारों की संख्या में छात्र, सिविल सेवा के उम्मीदवार और चिंतित नागरिक इकट्ठा हुए।

इस आंदोलन की विकेंद्रीकृत प्रकृति, शिक्षा सम्बंधी चिंताओं की प्रामाणिकता और संस्थागत जवाबदेही की मांगों की नैतिक स्पष्टता जाहिर थी। प्रदर्शनकारी दिल्ली के जंतर-मंतर पर इकट्ठा हुए और उन्होंने संसद तक मार्च का आह्वान किया, जो प्रदर्शन स्थल से मुश्किल से दस मिनट की पैदल दूरी पर था। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर हमले किए, कई लोगों को सड़कों पर पीटा और वॉटर कैनन व कथित रूप से पेलेट गन का भी इस्तेमाल किया गया। दिल्ली पुलिस के अनुसार करीब 180 लोग घायल हुए। लेकिन इसने आंदोलन को दबाने के बजाय जनक्रोध को और बढ़ा दिया और विरोध-प्रदर्शन कई शहरों और कस्बों में फैल गया।

2019 के नागरिकता संशोधन अधिनियम के खिलाफ प्रदर्शन और किसानों के 2020-21 के आंदोलन सहित पिछले प्रोटेस्ट्स के विपरीत इस छात्र आंदोलन को महज अल्पसंख्यक अधिकारों या संकीर्ण हितों पर केंद्रित आंदोलन के रूप में चित्रित नहीं किया जा सकता था। मुद्दा यह है कि ये 'काँकरोच' जिस आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे मतदाताओं का लगभग आधा हिस्सा हैं और इनमें से अधिकांश मध्यमवर्गीय परिवारों से आते हैं। इनमें वे परिवार भी शामिल हैं, जो पारंपरिक रूप से भाजपा को वोट देते रहे हैं। सत्तारूढ़ पार्टी के लिए इस समूह को अपने खिलाफ कर लेना चुनावी विफलता को आमंत्रित करने जैसा होता। यही कारण था कि सरकार को पीछे हटना पड़ा और धर्मद्र प्रधान से इस्तीफा लिया गया।

भारत के युवाओं ने अपने नेताओं को याद दिलाया है कि राजनीतिक प्रतिष्ठान चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो जाए, वह जनता की सामूहिक इच्छा को अनिश्चितकाल तक अनदेखा नहीं कर सकता। उन्होंने यह भी

दिखाया कि संस्थानों को कमजोर किया जा सकता है और राजनीतिक विपक्ष को भी दबाया जा सकता है, लेकिन उस अराजक ऊर्जा पर अंकुश नहीं लगाया जा सकता, जो युवाओं के प्रोटेस्ट्स को प्रेरित करती है। लोकतंत्र केवल विधायी कक्षाओं, अदालतों या चुनाव आयोगों में ही निहित नहीं है। यह नागरिकों पर भी निर्भर करता है। और भारत के नागरिकों ने दिखाया है कि उनकी लोकतांत्रिक-भावना दमन से परे है।

कॉकरोच आंदोलन सत्ता-तंत्र के लिए एक अल्पकालिक राजनीतिक सिरदर्द से कहीं बढ़कर है। क्योंकि वो इस धारणा की एक बार फिर से पुष्टि करता है कि केंद्रीकरण और कार्यकारी-प्रभुत्व के अनेक वर्षों के बाद भी भारतीय लोकतंत्र में अंतिम शक्ति जनता के पास ही रहती है। और न तो भारत की जनता कहीं जाने वाली है, न ही हमारा लोकतंत्र।



दैनिक जागरण

Date: 07-08-26

मंदिर प्रबंधक तैयार करने का समय

विकास सारस्वत, (लेखक इंडिक अकादमी के सदस्य एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)



रामजन्मभूमि मंदिर अपनी प्राण-प्रतिष्ठा के मात्र दो वर्षों के भीतर ही संस्थागत विफलता के एक अप्रत्याशित उदाहरण के रूप में सामने आया है। यहां चढ़ावा चोरी के मामले से करोड़ों लोगों की भावनाएं आहत हुई हैं। इसमें यह बात विशेष रूप से चिंताजनक है कि यह घटना एक ऐसे मंदिर में घटी, जो सैकड़ों वर्षों के कड़े संघर्ष, अनेक लोगों के बलिदान और करोड़ों व्यक्तियों के दान के फलस्वरूप बना है। अयोध्या के अलावा बदरीनाथ धाम-उत्तराखंड और अंबाजी मंदिर-गुजरात के दान-पात्र से भी चोरी की घटनाएं सामने आई हैं। इतने प्रसिद्ध और संसाधन-संपन्न मंदिरों में गहन निगरानी के बावजूद प्रबंधन की विफलता अन्य मंदिरों में भी चढ़ावा चोरी और वित्तीय अनियमितताओं की

आशंकाओं को जन्म देती है। अयोध्या में हुए दुखद घटनाक्रम के बाद एक मुखर प्रतिक्रिया यह आई है कि मंदिरों को कारपोरेट सरीखे पेशेवर तरीके से चलाया जाए। राम मंदिर निर्माण समिति के अध्यक्ष और सेवानिवृत्त आइएएस नृपेंद्र मिश्रा ने सीईओ नियुक्ति का सुझाव दिया। उन्होंने इस पदाधिकारी के सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त रहने की भी अपेक्षा की।

हालांकि दोनों ही मत इसकी अनदेखी करते हैं कि मंदिर न तो विशुद्ध रूप से व्यवसाय है और न ही सरकारी उपक्रम। यह अवश्य है कि जवाबदेही में सुधार के लिए दान की गणना में पारदर्शिता, नियमित कार्य आडिट, विस्तृत नियमावली और खातों की संपूर्ण जांच जैसी कार्यप्रणाली बने। गणना कक्षों में छेड़छाड़-रोधी प्रणाली, सीसीटीवी, आरएफआइडी टैग युक्त दान-पेटियां और बड़े चढ़ावों के लिए ब्लाकचेन जैसी अपरिवर्तनीय लेखा-प्रणाली ऐसा अंकेक्षण मार्ग बना सकती है, जिसे कोई दुर्जन आसानी से धोखा नहीं दे सकता। एक अलग संग्रहालय में ऐसे बहुमूल्य चढ़ावे को सीमित अथवा दीर्घकाल के लिए प्रदर्शित भी किया जा सकता है। तृतीय पक्ष लेखा परीक्षण और सरल भाषा में सारांश सहित विस्तृत लेखा रिपोर्टों को हर तिमाही वेबसाइट पर डालने जैसे बहुत से कदम उठाए जा सकते हैं, जो दानदाताओं एवं श्रद्धालुओं में विश्वास का भाव बनाएं। तिरुमला तिरुपति देवस्थानम और गुरुवायुर जैसे कई मंदिरों में ऐसी व्यवस्था बनी भी हुई है। यह भी स्मरण रहे कि मंदिर न तो कोई ऐसी कंपनी है जो शेयरधारकों के लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करे और न ही वह शासकीय दायित्व का भाग है, जो सरकार के जनकल्याण उद्देश्यों की पूर्ति करे।

मंदिर एक जीवंत धार्मिक संस्था है, जिसकी वैधता उतनी ही मात्रा में अनुष्ठानिक शुद्धता, परंपरा और पवित्रता पर टिकी है, जितनी आर्थिक शुचिता पर। अतः कारपोरेट प्रबंधन को ज्यों का त्यों मंदिरों पर थोपने के बजाय एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था बनाई जानी चाहिए, जो आडिट, प्रौद्योगिकी, आंतरिक नियंत्रण, पेशेवर वित्त प्रबंधन जैसे आधुनिक प्रशासकीय उपकरणों को आगम शास्त्र और धार्मिक व्यवस्था के अधीन रखे। मंदिर के अपने अनुष्ठानों पर अधिकार का स्रोत आगम शास्त्र यानी परंपराएं हैं। वे ऐसे संहिताबद्ध शास्त्रीय ग्रंथ हैं, जो विभिन्न संप्रदायों के मंदिरों के लिए भिन्न प्रकार के प्रविधान निश्चित करते हैं। जैसे वैष्णव मंदिरों के लिए पाञ्चरात्र और वैखानस आगम, शैव मंदिरों के लिए कामिक, करण और भैरव आगम और शाक्त संप्रदायों के लिए शक्ति आगम। ये कोई आंतरिक 'मानक प्रचालन प्रक्रियाएं' यानी एसओपी नहीं हैं, जो प्रबंधन की दक्षता को निरूपित करें, बल्कि ये मंदिर का अपना संवैधानिक कानून हैं। यदि किसी सीईओ को धर्मशास्त्रीय प्रशिक्षण के बिना मंदिर संचालन का अधिकार दिया जाए, तो वह भली मंशा के बावजूद प्रतिष्ठित इष्ट के साथ न्याय नहीं कर पाएगा। वह ऐसे परिवर्तन कर सकता है, जो स्वयं देवता की प्राण-प्रतिष्ठा की पवित्रता को निरस्त कर दे। कुछ इसी प्रकार का दोष सरकारी बोर्डों के मत्थे लगता है, जो परंपराओं की विशिष्टताओं के विपरीत विभिन्न मंदिरों पर एक समान मंदिर-प्रबंधन नियम थोप इस विविधता को रौंद देते हैं। आगमिक मंदिरों में ऐतिहासिक रूप से सत्ता का एक अंतर्निहित पृथक्करण रहा है। केवल अर्चक या पुजारी ही पूजा-अनुष्ठान कर सकता है। मंदिर वास्तु-संरक्षक, मंदिर की संरचना एवं उसकी शिल्प शास्त्रीय अनुरूपता सुनिश्चित करता है। इसी प्रकार लौकिक ट्रस्टी जो कभी राजा होते थे, मंदिर के भौतिक रखरखाव, भूमि, कोष, सुरक्षा एवं विवाद निस्तारण के लिए उत्तरदायी होते हैं। यह विखंडन आध्यात्मिक और भौतिक सत्ताओं को एक ही शक्ति में केंद्रित होने से रोकता था, पर एक सर्वशक्तिमान सीईओ पुनः ऐसे त्रुटिपूर्ण केंद्रीकरण को जन्म दे सकता है। अल्पकालिक अवधि में ऐसे ट्रस्टियों का चयन जो आधुनिक प्रबंधन के साथ आगम शास्त्रों के भी ज्ञाता हों, थोड़ा चुनौतीपूर्ण होगा।

वर्तमान परिस्थितियों का उपयोग एक ऐसे अवसर के रूप में किया जा सकता है, जो बिजनेस मैनेजमेंट या होटल मैनेजमेंट की शैली पर टैंपल मैनेजमेंट यानी मंदिर-प्रबंधन के लिए कार्यकारी तैयार करे। तिरुपति या अयोध्या जैसे बड़े मंदिर ऐसे संस्थान खड़े करने का बीड़ा उठा सकते हैं। इन संस्थाओं का उद्देश्य ऐसे मंदिर प्रबंधकों का विकास होना चाहिए, जिनमें आध्यात्मिक संवेदनशीलता के साथ आधुनिक प्रबंधन की कुशलताएं हों। अर्चकों के लिए चर्या पाद, परिचारकों और स्थानिकों के क्रिया पाद, अध्येताओं एवं कलाकारों के लिए ज्ञान पाद व सभी के लिए योग पाद की अनिवार्यता वैसी आचरण संहिता हैं, जो प्रबंधन और मानव संसाधन को व्यावहारिक, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित कर सकती हैं। अयोध्या में हुई चोरी धर्म की विफलता नहीं, बल्कि व्यवस्थापन की विफलता है। इसलिए समाधान यह नहीं होना चाहिए कि मंदिर का कारपोरेट अधिग्रहण हो। न ही यह कि परंपरा के नाम पर मंदिरों की विशाल भौतिक संपत्ति को अनियंत्रित छोड़ दिया जाए। समाधान वह है, जिसका आदर्श स्वयं आगमों ने सदियों पहले प्रस्तुत किया है। आध्यात्मिक सत्ता को भौतिक प्रशासन से पृथक रखा जाए और प्रशासन को इस प्रकार उत्तरदायी बनाया जाए, ताकि मंदिर की गरिमा पर आंच न आए।

Date: 07-08-26

जजों की संख्या बढ़ाना कितना कारगर

जगदीप सिंह, (लेखक राजनीतिशास्त्र के प्रोफेसर हैं)



बीते दिनों संसद ने सुप्रीम कोर्ट न्यायाधीशों की संख्या (संशोधन) विधेयक, 2026 पारित कर दिया। इसके तहत मुख्य न्यायाधीश को छोड़कर न्यायाधीशों की संख्या 33 से बढ़ाकर 37 करने का प्रस्ताव है। इस प्रकार सुप्रीम कोर्ट में न्यायाधीशों की कुल संख्या 34 से बढ़कर 38 हो जाएगी। यह बदलाव केवल पदों की संख्या बढ़ाने तक सीमित नहीं है, बल्कि न्यायिक प्रक्रिया को अधिक तेज, सुलभ और प्रभावी बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस वृद्धि का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव लंबित मामलों के निस्तारण पर पड़ेगा। सुप्रीम कोर्ट में आज लगभग 92,000 मामले

लंबित हैं। वर्तमान में सीमित संख्या में जज होने के कारण प्रतिदिन सीमित मामलों की ही सुनवाई हो पाती है। अनेक महत्वपूर्ण अपीलें और याचिकाएं महीनों तक सूचीबद्ध होने की प्रतीक्षा करती रहती हैं। अतिरिक्त चार न्यायाधीशों की नियुक्ति से एक साथ अधिक खंडपीठों का गठन संभव होगा। संविधान पीठों पर भी न्यायाधीशों की संख्या बढ़ने का गहरा प्रभाव पड़ेगा। अनेक संवैधानिक और सार्वजनिक महत्व के मामले पांच, सात या नौ

न्यायाधीशों की संविधान पीठ के गठन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। न्यायाधीशों की सीमित संख्या के कारण ऐसी पीठें अपेक्षाकृत कम ही गठित हो पाती हैं। अतिरिक्त जज उपलब्ध होने से मुख्य न्यायाधीश नियमित रूप से संविधान पीठों का गठन कर सकेंगे। इससे महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रश्नों पर शीघ्र निर्णय आएंगे। परिणामस्वरूप कानूनी स्पष्टता बढ़ेगी और अन्य अदालतों को स्पष्ट दिशा-निर्देश प्राप्त होंगे। उनसे आने वाले मामलों पर भी इसका प्रभाव होगा।

उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा अन्य राज्यों के उच्च न्यायालयों में लाखों मामले लंबित हैं। इन न्यायालयों से बड़ी संख्या में अपीलें और विशेष अनुमति याचिकाएं सुप्रीम कोर्ट तक पहुंचती हैं। जब सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई में देरी होती है तो राज्य स्तर पर भी अनिश्चितता बनी रहती है। अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति से इन अपीलों का निस्तारण अधिक तेजी से हो सकेगा। उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध दायर मामलों में शीघ्र अंतिम फैसला आने से राज्यों में न्यायिक प्रक्रिया भी गति पकड़ेगी। इससे नागरिकों को राज्य स्तर से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक न्याय प्राप्त करने में लगने वाला कुल समय कम होगा। आम नागरिकों के जीवन पर इसका प्रभाव सबसे अधिक सार्थक होगा। संपत्ति विवाद, पारिवारिक मामले, सेवा संबंधी अपीलें, आपराधिक अपीलें तथा मौलिक अधिकारों से जुड़े मुकदमे अब लंबे इंतजार के बजाय अधिक समयबद्ध तरीके से निपट सकेंगे।

जो लोग वर्षों से मुकदमेबाजी का खर्च उठाते-उठाते थक चुके हैं, उन्हें राहत मिलेगी। बार-बार अदालत में तारीख पर उपस्थित होने की मजबूरी कम होगी। न्याय अधिक सुलभ, त्वरित और व्यावहारिक प्रतीत होगा। आर्थिक क्षेत्र पर भी इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। व्यापारिक विवाद, अनुबंध संबंधी मामले और निवेश से जुड़े मुकदमे लंबे समय तक लंबित रहने से अनिश्चितता बनी रहती है। इसके कारण कंपनियां और उद्यमी महत्वपूर्ण निर्णय लेने में हिचकिचाते हैं। सुप्रीम कोर्ट में मामलों का शीघ्र निस्तारण होने से व्यापारिक वातावरण में सुधार होगा और निवेशकों का विश्वास बढ़ेगा।

जब लोग देखेंगे कि सुप्रीम कोर्ट अधिक गति और दक्षता के साथ कार्य कर रहा है तो न्यायिक व्यवस्था पर उनका विश्वास और मजबूत होगा। साथ ही न्यायाधीशों पर अत्यधिक कार्यभार कम होने से निर्णयों की गुणवत्ता में भी सुधार आएगा। हालांकि न्यायाधीशों की संख्या में यह वृद्धि केवल सुप्रीम कोर्ट तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। उच्च न्यायालयों और जिला स्तर की अदालतों में भी जजों की संख्या बढ़ाने तथा रिक्त पदों को शीघ्र भरने की आवश्यकता है। यदि उच्च न्यायालय मजबूत होंगे तो सुप्रीम कोर्ट तक अनावश्यक अपीलें कम पहुंचेंगी। इससे सुप्रीम कोर्ट अपना अधिक समय संवैधानिक और सार्वजनिक महत्व के मामलों पर केंद्रित कर सकेगा। दोनों स्तरों पर एक साथ सुधार होने से ही न्याय व्यवस्था समग्र रूप से अधिक प्रभावी बन सकेगी।

यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के साथ डिजिटल सुविधाओं का बेहतर उपयोग भी संभव होगा। ई-फाइलिंग, वर्चुअल सुनवाई और केस मैनेजमेंट सिस्टम अधिक प्रभावी ढंग से कार्य करेंगे। इससे दूरदराज के राज्यों से आने वाले पक्षकारों और अधिवक्ताओं को भी सुविधा मिलेगी। वैसे केवल

न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा देने से ही उद्देश्य पूरा नहीं होगा। योग्य, अनुभवी और समर्पित न्यायाधीशों की समय पर नियुक्ति भी उतनी ही आवश्यक है। इसके साथ ही न्यायालयों के बुनियादी ढांचे और सहायक कर्मचारियों की व्यवस्था को भी सुदृढ़ करना होगा तभी इस वृद्धि का पूरा लाभ प्राप्त हो सकेगा। इसके अतिरिक्त तारीख पर तारीख के सिलसिले को भी रोकना होगा। यह समझा जाए कि जितना आवश्यक सुप्रीम कोर्ट से न्याय मिलना है, उतना ही अन्य न्यायालयों से भी, क्योंकि न तो हर मामला सर्वोच्च अदालत पहुंचता है और न ही हर कोई वहां तक जा सकता है।
